केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि इतिहास का जीवन्त अभिलेख है बहुरुपियों की लुप्त होती कलाएँ!

- लेखक : DAKSHIN KOSAL TODAY DESK
- तारीख : March 07, 2026

(दक्षिण कोसल टुडे द्वारा सम्पादकीय भूमिका)

भारत की पावन धरती पर घुमंतू कलाकारों की एक अनूठी परिपाटी रही है। गाँवों की गलियों और हाट-बाज़ारों में भाँति-भाँति का स्वांग रचकर मन मोह लेने वाले ये बहुरूपिये वास्तव में हमारे लोक-इतिहास के जीवंत अभिलेख हैं। पर दक्षिण कोसल के अंचलों समेत देशभर में रामायण और महाभारत की गाथाओं को अपनी बोली-बानी से सजीव करने वाले इन कलाकारों की थाती अब बिलाती जा रही है। चौमासा (वर्ष 37, अंक117) से साभार उद्धृत इस लेख में डॉ. श्रीकृष्ण काकड़े हमें उसी सुहावनी घुमक्कड़ी और लोक-रामायण की बिसरती यादों से जोड़ते हैं। आइए, मनोरंजन की इस प्राचीन लोक-निधि के माध्यम से हम अपने अतीत की थाती सहेजने को कृतसंकल्प हों!

केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि इतिहास का जीवन्त अभिलेख है बहुरुपियों की लुप्त होती कलाएँ!

भारत में घुमंतू कलाओं की समृद्ध परंपरा सदियों से चली आ

रही है, जिसके प्रांत तथा जाति अनुसार अलग-अलग रूप-रंग हैं। मध्य भारत के कई हिस्सों में बहुरूपियों का निवास है। उन्हें सिदधन, रायरंग, बहुरूपी, बैरागी जैसे नामों से पहचाना जाता है। परम्परागत तरीके से ये लोग अपनी कलाएँ दिखाकर जनमानस का मनोरंजन करते आये हैं। अतीत में बहुरूपी लोक बारहमासा के विभिन्न प्रकार के स्वांग लेकर गाँव-गाँव घूमते थे। देवी-देवता, असुरों की आवाज निकालते हैं। वहाँ गाँव के बाहर डेरा डालते थी। उनके जन्म, विवाह, मत्यु जैसे जीवन संस्कार घूमते-घूमते ही पूरे होते। दिन निकलते ही पुरुष विभिन्न प्रकार का स्वांग लेकर आसपास के गाँवों में घूमते थे। जो मनोरंजन हेतु रोजमर्रा के अलावा बाजार-हाटों, रीति-रिवाज, त्योहार, परम्पराएँ तथा पर्वों के अनुसार आविष्कृत की जाती हैं। बाजार, हाट, यात्राएँ एवं उर्सों में उनकी काफी कमाई होती थी। उनकी प्रदर्शन कलाओं में हास्य, श्रृंगार, करुण रसों का रसपान होता था। कुछ साल पहले तक ग्रामीण अंचलों में बहुरूपियों के पौराणिक नाट्य काफी प्रसिद्ध थे। स्त्रियाँ, बच्चों के साथ इसी से अपना गुजारा करते। कभी-कभी महिलाएँ कटलरी का सामान, जंगली जड़ी-बूटियाँ, दवाईयाँ बेचतीं, बदले में उनको कुछ पैसे तथा साग-रोटी मिलता। वे देवी-देवता, असुरों के स्वांग लेकर उनकी तरह आवाज निकालते। पशु-पक्षी, प्राणियों की ध्वनि निकालते हुए लोगों को डराते। पोटासुरी, दंडासुरी जैसे सांगों में शरीर पर जख्म बनाकर सहानुभूति प्राप्त करते। कृष्ण-राधा, गवलण बनकर गावों, कस्बों की स्त्रियों को शादी का न्यौता देते, जो काफी मनोरंजक होता था।

लगनाला चला बायांनो, बहिणींनो, लगनाला चला। शारदाबाई,
गंगूबाई, धुरपदाबाई, सोनाबाई, मिराबाई।
चला पालखीत बसा दुडकी निसा।
दोन तोळे अफू द्या आणि सैपाकाला बसा।
उरुल्या करुल्या, शेंबळान भरूल्या, भितींन सारुल्या।
पोरसोर बांधा खांबाला, नवरे बांधा जात्याला।
बत्तीस तारखेला, पांढरूया सोमवारी।
तेराव्या महिन्यामध्ये, तीन पोते वांग्याचा शिरा।
पन्नास गावाला निमंत्रण आहे, पोरासोराला गोड जेवण आहे।
म्हातार्या म्हातारीला हरभरे आहेत। फिकीर कराची नाही।
पेशल गाड़ी आणलेली आहे।

भावार्थ सब माता-बहनों शादी में चलो, पालकी में बैठो, खाना बनाओ। नाक के मैल से घर की दीवारें खराब हुई हैं। अपने बच्चों को खम्बे से तथा पतियों को घट्टी से बाँधो। बत्तीस तारीख सफेद सोमवार के दिन शादी है, तेरहवें महीने में। बैंगन का हलवा बनाया है। सभी गाँव को न्यौता है। बच्चों के लिए मिठा खाना है। बुजुर्गों के लिए चने हैं। फिक्र मत करो। खास गाड़ी लायी है।

बहुरूपिये इस तरह से हँसी-मजाक करके सभी को हँसाते, विनोदी भाषा मे संवाद करते, जिसके कारण गाँव की महिलाएँ बच्चे उनको आसानी से समझ जाते। घर-घर की महिलाएँ उन्हें अनाज, कपड़े तथा सब्जी-रोटी देती। जिससे उनकी आजीविका चलती। कुछ बहुरूपिये अकेले अकेले अपने परिवारों के साथ घूमते-घूमते कला पेश करते थे।

खोट कधी बोलणार नाही।
खोटे बोललो तर, बायकोची माय मरण।
इन बसली चुलीत अन् इवाई बसला खोलीत।
इन घालते धांडे, इवाई चाफलते मांडे।
इनीच तेरस, इवायाचं बारस।

आणला शेर, केला फेर।
आणली पायली, केली वायरी।

भावार्थ झूठ कभी नहीं बोलूँगा, अगर झूठा साबित हुआ, तो मेरी सास मर जायेगी। समधी चूल्हा जला रहा है, तो समधन रोटी बना रही है, समधन की तेरवीं और समधन का नामकरण है। शेर लाया, फेर किया। अनाज लाया, बहू बनाया। ऐसे मजेदार किस्से, संवाद करते हुये घूमते थे। बच्चो का रोना, बड़ों का चिल्लाना, कुत्तों का भौंकना, बिल्लियों का झगड़ा, गधे घोड़े, तीतर, होलगी का शोर मचाना, ऐसे मुँह से आवाज निकालते, जिससे बच्चे डर जाते थे, रोने लगते, आजू बाजू के लोग हँसते थे।

मनोरंजन के साधन कम होने से बहुरूपिया कला के लिए अच्छे दिन थे, लेकिन समय के साथ उनकी कला में बदलाव होते गये। अभी भी कुछ लोग इस कला को सम्भाले हुए हैं।

बहुरूपिया बहुरंगी कलाकार होते हैं, जो भगवान शिव, पार्वती, शनिदेव, यमराज, अप्सराओं, राम लक्ष्मण, सीता, हनुमान, नारद, ऋषि, शिवाजी महाराज, तंट्या भील, पुलिस अधिकारी, पोस्टमैन, सेठजी, भटजी, बनिया, गर्भवती महिला ऐसे विभिन्न रूप लेकर सोंग (स्वांग) धारण करते हैं। उनकी कला देखकर ग्रामीण अंचलों के लोग खुशी से झूम जाते हैं। महिलाओं को बड़ा आनंद आता है, बच्चे तो उनके पीछे-पीछे सारा गाँव घूमते हैं। देवी-देवताओं के स्वांग लेने वाले बहुरूपियों को समाज में मान-सम्मान मिलता है, लोग उनको भिक्षा प्रदान करते हैं। नायक, खलनायक, स्त्री पात्रों की ऐसी भूमिकाएँ करते हुए वे लोगों का खूब मनोरंजन करते हैं। कुछ बहुरूपिये राधा, ग्वालन बनकर इतना साज श्रृंगार करते कि हूबहू स्त्रियाँ दिखते हैं। लोग उनको पहचान नहीं पाते। उनके बच्चे भी चिलिया बाल, रोहिताश्व, लव-कुश जैसी भूमिकाएँ बड़ी शिद्दत से निभाते है। कुछ लोग अनेक साड़ियाँ पहनकर द्रौपदी वस्त्रहरण के दृश्य को जीवित बना देते है। उनकी कला देखकर लोग उनको भिक्षा प्रदान करते है, कहीं-कहीं अनाज मिलता है, तो कहीं रोजमर्रा की जरूरी वस्तुएँ मिल जाती हैं, जिस पर उनकी आजीविका चलती है, कला से ही इनका पेट भरता है।

कुछ साल पहले तक ग्रामीण अंचलों में बहुरूपियों के पौराणिक नाट्य काफी प्रसिद्ध थे। रामलीला मंडलियों की तरह वे भी मंडलियाँ बनाकर गाँव-गाँव घूमकर अपनी कला पेश करते। एक समूह में दस से बारह लोग होते, जो एक-दूसरे के रिश्तेदार होते थे। इनमें बच्चों समेत स्त्रियाँ भी शामिल होतीं, हालाँकि नाट्य प्रयोगों में सिर्फ पुरुष और बच्चे ही काम करते। स्त्रियाँ को नाटक में कोई अदाकारी नहीं दी जाती। उस समय समाज में धार्मिक प्रवृत्ति के लोग अधिक थे। गाँवों में त्योहार, अनुष्ठान, पोथी वाचन जैसे धार्मिक समारोहों का आयोजन खूब होता था। लोग बहुरूपियों के नाट्यों को काफी पसंद करते। उस समय बहुरूपियें रामायण, महाभारत, राजा हरिश्चंद्र, सत्यवान-सावित्री, श्रवणकुमार, द्रौपदी वस्त्रहरण, सीता स्वयंवर, पांडव प्रताप, हनुमान जन्म, शिराल चांगुना, विक्रम-बेताल, पांडुरंग भक्ति ऐसे नाट्यप्रयोग पेश करते। कभी-कभी लोगों के रुचि अनुसार नये-नये विषयों को चुनकर तथा सामाजिक विषयों पर नाट्य प्रस्तुत करते थे। बिठाए जाते। जिसमें 'भाई-बहन की कथा', 'पति को फजीहत', 'पतिव्रता स्त्री', 'शराब का दुष्परिणाम', 'सास-बहू झगड़ा' जैसे विषयों पर नाट्य होता था। ऐसे बहुरंगी, मनोरंजक, सामाजिक, पौराणिक नाट्यों का इस्तेमाल समाज प्रबोधन तथा जनजागृति के लिए किया जाता था।

बहुरूपियों का रामायण आंचलिक क्षेत्रों में लोगों के बीच बहुत प्रसिद्ध था। पारम्परिक पदों, अभंगों और संवादों के माध्यम से उसकी प्रस्तुति होती। रामायण कथा श्रवणकुमार की कहानी से शुरू होती। रंगमंच पर गण का गायन होते ही अगले प्रवेश में श्रवण कुमार के माता-पिता रंगमंच पर प्रवेश करते। श्रवण कुमार उन्हें कावड़ में बिठाकर काशी यात्रा के लिये निकल पड़ता। पहाड़ी, जंगल के रास्ते वह गुजरता। बीच में माता-पिता को प्यास लगती, तब श्रवण कुमार पानी लेने नदी के पास जाता। तभी पेड़ पर बैठे राजा दशरथ बाण मारते और वह श्रवण कुमार को लगता है और वह कोधित होता है। राजा दशरथ तुरंत पेड़ से उतरकर उसकी ओर दौड़ते हैं। श्रवणकुमार माता-पिता की बात राजा को बताता है। श्रवण कुमार की मृत्यु हो जाती है।

श्रवण कुमार के माता-पिता राजा दशरथ को शाप देते है। इस प्रसंग में दिखाया गया शोक, विरह-आक्रोश दर्शकों के आँखों में पानी ला देता था। उसके बाद ऋषिगण राजा दशरथ के राजमहल में पुत्र कामेष्टी यज्ञ करते। उससे निकला 'पाईस कुंभ' दिखाया जाता। राजा दशरथ अपनी तीनों रानियों को कुंभ बांटते थे। रानी कैकेई के भाग को एक घार पंछी उठा ले जाता। वह भाग जंगल में दस हजार सालों से तप करती माता अंजना के हाथों पर गिरता। उसी कुंभ को माता अंजना प्राशन करती, उसी से हनुमान का जन्म होता। एक एक प्रसंग हर रोज दिखाकर रामायण की प्रस्तुति आगे बढ़ती है। फिर अयोध्या में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का जन्म दिखाया जाता है। बच्चों को पालने में डालकर उनका नामकरण होता है। लोरी गीत गाए जाते हैं। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की बाल लीलायें दिखाई जाती हैं। गुरु वाल्मीकि के आश्रम में उनकी शिक्षा होती है। वहाँ से राम-लक्ष्मण जनकपुरी निकलते हैं। आगे सीता स्वयंवर पर स्वतंत्र नाट्य होता है। राम-लक्ष्मण, राजा जनक, रावण की जुगलबंदी बहुत प्रभावशील होता। राम-सीता को स्वयंवर में जीत लेते हैं। अयोध्या में राम का आगमन, दासी मंथरा का कैकेई को बहकाना, रानी कैकेई द्वारा राजा दशरथ से भरत को राज्य तथा राम को वनवास माँगना दिखाया जाता। राम-सीता, लक्ष्मण का वनवास गमन दिखाया जाता। आगे के कुछ नाट्य प्रयोगों में शूर्पनखा का आगमन, लक्ष्मण द्वारा उसका नाक काटना, ऐसे दृश्य दिखाये जाते थे। फिर चित्रकूट में रावण का आगमन, सीताहरण आदि प्रसंगों पर नाट्य होता। राम का सीता शोध, विरह दिखाते। यह दृश्य देखकर सामने बैठे दर्शकों को बड़ी पीड़ा होती। उनके आँखों से आँसू निकलते। हनुमान भेंट, बालि-सुग्रीव संघर्ष दिखाया जाता। उसके बाद लंकादहन, सौता खोज, सेतू निर्माण, रामसेना का लंका पर आक्रमण, बंदरों की सेना दिखाई जाती, जिसमें कुछ बच्चों को वानर बनाया जाता। हनुमान की लीलाएँ देखकर गाँवों के बच्चे खुश हो जाते। राम-रावण युद्ध खुली जगह पर दिखाया जाता। इसमें गायन नहीं होता था, बस वाद्यों की धुनों पर युद्ध दृश्य दिखाये जाते। लक्ष्मण शक्ति की कहानी बड़े ही मधुर ढंग से सुनायी जाती थी।

लक्ष्मणाला शक्ती लागली, झुरे राम राम।
शिवसन वैद्य म्हणे, पर्वता द्रोणागिरी आण।
आणि करा जल्दी लवकर, रात्र आहे चार प्रहार।

अहो दिन उगवता जाईल प्राण, चिन्ह नाही बरं।
शंकर पाहून घोर, रघुवीर झाले जीर जीर।
हो नल नील जांबूवंत, अठरा पद्म वानरजी।
अंजनीचा पूत मारोती, अकरावा रुद्र।
आणीन द्रोणागिरी, मारोती म्हणे मी लवकर।
एक रात करमना, करावे ऐसे माझे मन।
हनुमान करे उड्डाण, मारोती करे उड्डाण।
वार्‍याला मागे टाकून, पित्याला मागे टाकून
वार्‍याचा वेश धरुन, इंद्राचा वेश धरुन।

भावार्थ लक्ष्मण को शक्ति लग गई, तो राम और सभी वानर चिंता ग्रस्त हो गए। सुषेन वैद्य आए, उन्होंने बताया- 'द्रोणागिरि पर इसकी वनौषधि है। उसको जल्दी लाओ, सिर्फ चार प्रहर का वक्त बचा है, नहीं तो दिन निकलते ही लक्ष्मण के प्राण चले जाएंगे।' राम, नल, नील, जामवंत समेत सभी वानर चिंताग्रस्त हो गये। तब अंजनी पुत्र हनुमान आगे आये। उन्होंने सबको कहा-'मैं द्रोणागिरि लाता हूँ।' अपने पिता वायुदेव को पीछे छोड़ते हुए, वायु का वेश बनाकर वह निकल पड़ते हैं। हनुमान द्रोणागिरी पर्वत उठा लाते हैं। राम सेना में आनंद का वातावरण छा जाता। जिसके बाद लक्ष्मण जिंदा हो जाते, वह गुफा में बैठे इंद्रजीत की तपस्या भंग करके उसका वध करते। इन्द्रजीत को भुजा जाकर चंद्रसेना के महल में गिरती। वहाँ फिर 'सती चंद्रसेना' का नाट्य दिखाया जाता। रावण चिंताग्रस्त होता है, फिर वहाँ अपने भांजे अहिरावण- महिरावण को बुलाता है। इस नाट्य में अहिरावण महिरावण का दरबार, हनुमान समुद्र पार करना, मगरी हनुमान संवाद, मकरध्वज, सती चंद्रसेना की कहानी लोगों को बहुत पसंद आती थी।

चंद्रसेना करून तयारी, बसली पलंगी।
श्रीरामाला घेऊन आले, वीर मारोती।
पलंगा जवळ उभे देव रघुपती।
पाय ठेवता पलंग मोडला, जगी झाली गती।
निघाले मारोती, चालले देव रघुपती।

मारोतीच कपट ओळखलं, चंद्रसेना सती।

भावार्थ चंद्रसेना सजधज के तैयारी करके शयन आसन पर बैठ गयी। हनुमान राम को लेकर वहाँ आ जाते है। वह पलंग के सामने खड़े थे। राम ने जब पलंग पर अपना पाँव रखा, तो वह टूट गया। तभी श्रीराम हनुमान के साथ वहाँ से निकल पड़े और हनुमान का कपट चंद्रसेना ने पहचान लिया। चंद्रसेना राम का आशीर्वाद प्राप्त करती। फिर एक दिन कुंभकर्ण का प्रसंग दिखाया जाता। जिसका बच्चे काफी बेसब्री से इंतजार करते। किसी बड़े व्यक्ति को कुम्भकर्ण बनाया जाता है, जो खूब तेज आवाज के साथ खर्राटे लेकर नींद से जागता। फिर राम-रावण युद्ध होता। विभीषण-राम को रावण की मृत्यु का राज बताते। अंत में रावण की मृत्यु हो जाती। राम सेना आनंद मनाती। श्रीराम विभीषण को लंका का राजा बनाकर अयोध्या वापस लौट आते। लोक रामायण की इस श्रृंखला का पूरी रात बैठकर महिलाएँ तथा बच्चे भरपूर आनंद उठाते। रामायण का यह खेल कई दिनों तक गाँवों में चलता। हर एक प्रयोग के बाद राम की आरती होती। रात में नाट्य प्रयोग होते, तो दिन में कलाकार आराम करते। गाँव के लोग उनको निवास की जगह देते, खाना खिलाते। रामायण की समाप्ति के बाद, गाँव के हर घर से उनको दान मिलता। समापन के दिन गाँव के लोग पैसे, अनाज, गेहूँ, दाल, चने, चावल देते। इसे बाजार में बेचकर बहुरूपिये पैसे कमाते। इसी से उनकी आजीविका चलती। बहुरूपियों को इस कला का धार्मिक आधार होने के कारण लोग भी उनकी इस कला को पवित्रता के भाव से देखते और उनको हर संभव मदद करते। बीसवीं सदी के अंत तक बहुरूपियों की लोक रामायण प्रस्तुति निरंतर जारी थी, लेकिन उसके बाद वह धीरे-धीरे लुप्त होते गई। अब वह पूरी तरह लुप्त हो चुकी है। दिनोंदिन बहुरूपियों की जीवनशैली में काफी बदलाव हो रहे हैं। अतीत में वे पूरी तरह भ्रमण पर निर्भर थे। पारंपरिक नाट्य एवं कला दिखाकर वे जीविका चलाते। पूरे वर्ष उनकी घुमक्कड़ी निरंतर चलती। बरसात के दिनों में कुछ समय के लिए वह अपने गाँव चले आते, जहाँ उनके विवाह जैसे संस्कार संपन्न होते, रिश्तेदारों से मिलना-जुलना होता। सब मिल-जुलकर अगले साल के लिए किए जाने वाले नाट्य प्रयोग तथा घुम्मकड़ी की रूपरेखा निश्चित करते थे।

अस्सी के दशक तक बहुरूपियों की कला पूरे जोरों पर थी पर आगे नब्बे के दशक में जनपदों में काफी बदलावों की प्रक्रिया शुरू हुई। पुरानी चीजें काफी तेजी से लुप्त होती गयीं। सड़क, बिजली, पानी, यातायात के साधन गाँवों तक पहुँच गए। लोगों की जीवन शैली में काफी बदलाव होने लगा। मनोरंजन के कई साधन गाँवों तक आसानी से पहुँचने लगे। टी.वी., सिनेमा की

लोकप्रियता बढ़ी। रामायण और महाभारत जैसी कहानियाँ टेलीविजन पर दिखाई जाने लगीं। लोगों की रूचि बदल गयी। नागर तथा जनपदों के लोग बहुरूपियों को हेय दृष्टि से देखने लगे। पुराने जमाने के कलाकार गायब हो गए। नई पीढ़ी को अपनी कला के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं रही, जिसके कारण बहुरूपियों की कलाएँ धीरे-धीरे समाप्त होने लगीं। हालांकि यह भी सच है कि कुछ बुजुर्ग बहुरूपिया कलाकार आज भी परंपरागत कला दिखाकर जीविका चला रहे हैं। अब तो लोगों ने भी बहुरूपिया लोगों की कला से मुँह मोड़ लिया है। जिसके कारण बहुरूपिया जनजाति ने अपना पारम्परिक व्यवसाय छोड़ दिया। उनकी घुमक्कड़ी बंद हो गयी, नई पीढ़ी के लोग दूर-दराज के गाँवों में बस गये। कोई खेती-बाड़ी का काम करने लगा, तो कोई मजदूरी। उनकी नई पीढ़ी ने रोजी-रोटी कमाने के नये रास्ते खोज निकाले, ऐसे बदलते वातावरण में हजारों सालों से चली आ रही बहुरूपिया कला अब धीरे-धीरे लुप्त होने लगी है।

संदर्भ

1. वाल्मीक जाधव, वायगौष, जिला वर्धा, इनका साक्षात्कार तथा ध्वनिचित्र मुद्रण
2. मारुती कदम, ग्राम जगलापूर, जिला-वर्धा, इनका साक्षात्कार तथा ध्वनिचित्र मुद्रण
3. रामभाऊ देवराव माहोरे, बहुरूपी मंडल, ग्राम आंवेद्वारी, जिला यवतमाल, इनका साक्षात्कार तथा ध्वनिचित्र मुद्रण
3. ताराचंद माहुरे, शंकर शिंदे, बहुरूपी मंडल, ग्राम केळझर, जिला-वसई, इनका साक्षात्कार तथा ध्वनिचित्र मुद्रण
4. रामभाऊ देवराव माहोरे, बहुरूपी मंडल, ग्राम आंबेझरी तह. शरीजामनी, जिला यवतमाल, इनका साक्षात्कार तथा ध्वनिचित्र मुद्रण

लेखक -
डॉ. श्रीकृष्ण काकड़े